

प्रार्थना

भावना दिन रात मेरी, सब सुखी संसार हो।
सत्य संयम शील का, व्यवहार घर-घर वार हो ॥
धर्म का परचार हो, अरु देश का उद्धार हो।
और ये उजड़ा हुआ, भारत चमन गुलजार हो ॥ 1 ॥
ज्ञान के अभ्यास से, जीवों का पूर्ण विकास हो।
धर्म के परचार से, हिंसा का जग से ह्रास हो ॥ 2 ॥
शान्ति अरु आनन्द का, हर एक घर में वास हो।
वीर वाणी पर सभी, संसार का विश्वास हो ॥ 3 ॥
रोग अरु भय शोक होंवें, दूर सब परमात्मा।
कर सके कल्याण ज्योति, सब जगत की आत्मा ॥ 4 ॥
आत्म बने परमात्मा, हो शांति सारे देश में।
है देशना सर्वोदयी, महावीर के संदेश में ॥ 5 ॥

जिनवाणी स्तुति

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी ॥ टेक ॥
मिथ्यात्व को है नाशा, निज तत्त्व को प्रकाशा।
अपना पराया भासा, हो भानु के समानी ॥ 1 ॥
षड्द्रव्य को जताया, स्याद्वाद को बताया।
भव-फन्द से छुड़ाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी ॥ 2 ॥
रिपु चार मेरे मग में, जंजीर डाले पग में।
ठाडे हैं मोक्ष मग में, तकरार मोसों ठानी ॥ 3 ॥
दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोड़ूँ नाता।
होवे सुदर्शन साता, नहीं जग में तेरे सानी ॥ 4 ॥

जैन धर्म शिक्षा

भाग-2



- अर्थ सौजन्य -

श्रीमती पुष्पावेन गुलाबचन्द शाह, मुम्बई

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान

वीरोदय नगर, नशियाँ रोड,

सांगानेर, जयपुर (राज.)- 302029

मूल्य : 4/- रुपये

जैन धर्म शिक्षा

(भाग-2)

पाठ सूची

1.	श्रावक के षट् आवश्यक कर्म	1
2.	द्रव्य	3
3.	तत्त्व एवं पदार्थ	6
4.	कर्म	8
5.	सच्चे देव-शास्त्र-गुरु	13
6.	रत्नत्रय	14
7.	भेद-विज्ञान	16
8.	षट्लेश्या	19
9.	ध्यान	21
10.	व्रत	23
11.	ग्यारह प्रतिमा	26
12.	पंचपरमेष्ठी के मूलगुण	29

पाठ-1

श्रावक के षट् आवश्यक कर्म

इस मनुष्य जन्म की प्राप्ति हमें किसी महान् पुण्योदय से हुई है, इसमें भी आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल, निरोगी काया, सत्पुरुषों की संगति आदि उत्तम निमित्त मिलने पर भी जो दान पूजादि षट् आवश्यक कार्यों को नहीं करता है, उसे आचार्यों ने पशु के समान माना है। इसलिए प्रत्येक श्रावक को षट् आवश्यक कार्यों को परमावश्यक समझकर प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये, जिससे इस भव में और पर भव में सुख शान्ति की प्राप्ति हो।

षट् आवश्यक कर्म इस प्रकार हैं :- 1. देवपूजा 2. गुरुउपासना, 3. स्वाध्याय 4. संयम 5. तप और 6. दान।

1. देवपूजा-मन-वचन-काय से भगवान् जिनेन्द्र के गुणों का विशेष रूप से चिन्तन-मनन करना देवपूजा कहलाती है। इसके लिये सर्वप्रथम छने हुये प्रासुक जल से स्नान कर, शुद्ध धुले हुये धोती-दुपट्टा पहनना चाहिए, श्री जी के अभिषेक व सामग्री धोने के लिये जल कुंए का ही काम में लेना चाहिये।

सर्वप्रथम जिनेन्द्र देव का अभिषेक करके अष्टद्रव्य का थाल सजाकर, विनय पूर्वक, सर्वप्रथम णमोकार मंत्र, स्वस्ति मंगल पाठ बोलकर अपनी इच्छा से देव-शास्त्र-गुरु आदि की पूजन, आह्वान-स्थापना-सन्निधिकरण करते हुये क्रमशः जलादि अष्ट द्रव्यों के छन्द पढ़कर द्रव्य चढ़ाते जाना चाहिए। तत्पश्चात् शेष अर्घ्य चढ़ाने के बाद शान्तिपाठ व विसर्जन करना चाहिए। इसके बिना पूजा अधूरी रहती है।

2. गुरुउपासना-समस्त परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि का विनय के साथ उपदेश सुनना, उनकी सेवा सुश्रुषा करना, उनकी आवश्यकता के अनुसार उनको पीछी,

कमण्डलु, शास्त्रादि उपकरण देना, विधि पूर्वक यथायोग्य नवधाभक्ति से शुद्ध आहार कराना आदि गुरुउपासना कहलाती है।

3. स्वाध्याय-श्री जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे हुये और गणधरों द्वारा निरूपित तथा आचार्यों द्वारा लिखे हुये ऐसे सदशास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना, पूछना-बताना, चिन्तन व मनन करना, चर्चा करना स्वाध्याय कहलाता है।

4. संयम-अपने मन और इन्द्रियों को नियंत्रण में रखना संयम कहलाता है। संयम दो प्रकार का होता है-इन्द्रिय संयम, प्राणी संयम। पाँचों इन्द्रियों और मन को वश में करना इन्द्रिय संयम कहलाता है। दयाभाव से षट्काय के जीवों का घात नहीं करना प्राणी संयम कहलाता है।

5. तप-अपनी इच्छाओं का निरोध करना तप कहलाता है। छह अन्तरंग और छह बहिरंग की अपेक्षा तप के बारह भेद होते हैं। इनको अपनी शक्ति अनुसार नित्य करना चाहिए।

6. दान-मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका को निज और पर के कल्याण के लिये, चार प्रकार के दान में अपने धन का त्याग करना दान कहलाता है। दीन दुखियों की भी आवश्यकतानुसार सहायता करना करुणा दान कहलाता है। दान के चार भेद हैं- 1. आहार दान 2. औषधि दान 3. उपकरण दान 4. आवास दान

1. आहारदान-खाद्य, स्वाद, लेय और पेय ये चार प्रकार का आहार भक्तिपूर्वक मुनिराज आदि को देना आहार दान है।

2. औषधि दान-शारीरिक कष्ट को दूर करने के लिए अनुकूल औषधि देना, औषधि दान कहलाता है।

3. उपकरण दान-साधुजनों को पिच्छी, कमण्डल और शास्त्र आदि प्रदान करना उपकरण दान कहलाता है।

4. आवास दान - साधुजनों के लिए वसतिका प्रदान करना, आवास दान है।

षट् द्रव्य

द्रव्य का लक्षण

जिसमें गुण और पर्याय होती हैं, उसे द्रव्य कहते हैं अथवा जिसमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य होता है, उसे द्रव्य कहते हैं।

द्रव्य के भेद

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं। इनमें जीव द्रव्य को छोड़कर पाँच द्रव्य अजीव हैं।

1. जीव द्रव्य -जिसमें जानने-देखने की शक्ति होती है, उसे जीव कहते हैं। जैसे- देव, मनुष्य, नारकी, पशु आदि।

2. पुद्गल द्रव्य -जिसके परमाणु मिलते और बिखरते हैं अथवा जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण होता है, उसे पुद्गल कहते हैं। जैसे पुस्तक, कलम, परमाणु, गोली, पारा आदि।

पुद्गल के भेद-परमाणु और स्कन्ध ये दो पुद्गल के भेद हैं अथवा सूक्ष्म और स्थूल ये दो भी पुद्गल के भेद हैं।

1. परमाणु -पुद्गल के सबसे छोटे (अविभागी) टुकड़े को परमाणु या अणु कहते हैं। वह इतना छोटा (बारीक) होता है कि रूपवान् (रूपी या मूर्तिक) होने पर भी हमें दिखाई नहीं देता।

2. स्कन्ध - दो या दो से अधिक मिले हुए पुद्गल परमाणुओं को स्कन्ध कहते हैं। जैसे-गोलियां, चूरण, चटनी आदि।

पुद्गल द्रव्य की पर्याय-शब्द, बन्ध, स्थूलता, सूक्ष्मता, आकार, हिस्सा, अन्धकार, परछाई, प्रकाश, चांदनी और धूप ये सब पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं।

धर्म द्रव्य - जो द्रव्य स्वयं चलते हुए जीव और पुद्गलों को चलने या उड़ने में उदासीन रूप से मदद करता है, उसे धर्मद्रव्य कहते हैं। जैसे जल मछली को चलने तथा हवा पतंग को उड़ने में सहायक होती है। यदि धर्मद्रव्य नहीं होता तो जीव और पुद्गल चल नहीं सकते।

अधर्म द्रव्य - जो द्रव्य स्वयं ठहरते हुए जीव और पुद्गलों को ठहरने में उदासीन रूप से सहायक होता है, वह अधर्मद्रव्य कहलाता है। जैसे वृक्ष की छाया थके हुये मुसाफिर को ठहरने में सहायक होती है। यदि अधर्मद्रव्य नहीं होता तो जीव और पुद्गल ठहर नहीं सकते।

आकाश द्रव्य - जो समस्त द्रव्यों को ठहरने के लिये स्थान देता है, उसे आकाशद्रव्य कहते हैं। यदि आकाश द्रव्य नहीं होता तो किसी वस्तु को रहने के लिये जगह नहीं मिलती। लोकाकाश (लोक) और अलोकाकाश (अलोक) ये दो आकाश द्रव्य के भेद हैं।

लोकाकाश - जितने स्थान में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छहों द्रव्य रहती हैं, उतने आकाश या स्थान को लोकाकाश या लोक कहते हैं।

अलोकाकाश - जिस स्थान में केवल आकाश ही आकाश है, अन्य कोई द्रव्य नहीं है, उसे अलोकाकाश या अलोक कहते हैं।

कालद्रव्य

निश्चयकाल और व्यवहारकाल ये दो कालद्रव्य के भेद हैं।

निश्चयकाल - जो स्वयं पलटता है तथा स्वयं पलटते हुए अन्य द्रव्यों के पलटने (परिणमन करने) में कुम्हार के चाक की कील के समान सहायक होता है, उसे निश्चयकाल कहते हैं।

व्यवहारकाल - घड़ी, घन्टा, दिन, सप्ताह, पक्ष और महीना आदि को व्यवहारकाल कहते हैं।

विशेष

1. बहुप्रदेशी द्रव्य को अस्तिकाय कहते हैं। कालद्रव्य अस्तिकाय नहीं है, क्योंकि उसका प्रत्येक अणु अलग-अलग रहता है। शेष पाँच द्रव्य एक अणु से अधिक जगह घेरते हैं, इससे वे अस्तिकाय हैं।

2. धर्म और अधर्म द्रव्य, जीव तथा पुद्गल को प्रेरित कर नहीं चलाते या ठहराते हैं, किन्तु जब वे चलते या ठहरते हैं तब उनको मदद अवश्य देते हैं।

3. ये छह द्रव्य समस्त लोक में व्याप्त हैं, फिर भी एक दूसरे के रहने में बाधक नहीं होते।

4. पुद्गल द्रव्य को छोड़कर शेष द्रव्य दिखाई नहीं देते क्योंकि वे रूपरहित (अरूपी) या अमूर्तिक हैं।

5. धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य एक-एक ही हैं। इनके हिस्से या भेद नहीं होते।

धर्म और अधर्म से यहाँ पुण्य और पाप नहीं समझना, किन्तु षट्द्रव्यों के अन्तर्गत द्रव्यों समझना चाहिये। अन्यत्र धर्म और अधर्म का अर्थ शुभाशुभ कर्म का फल पुण्य और पाप जानना चाहिये।

तत्त्व एवं पदार्थ

तत्त्व

जिनके जानने या श्रद्धान करने से हमें अपने आत्मा के सच्चे हित का ज्ञान हो सके और हम अपनी आत्मा को पवित्र कर सकें, ऐसे वस्तु के स्वभाव को तत्त्व कहते हैं।

तत्त्वों के भेद

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं, इनमें पुण्य और पाप मिला देने से नौ पदार्थ हो जाते हैं।

1. **जीव** - जिसमें चेतना पायी जाती है, उसे जीव कहते हैं।
2. **अजीव** - जिसमें चेतना नहीं पायी जाती है, उसे अजीव कहते हैं।
3. **आस्रव** - रागद्वेष आदि भावों के द्वारा आत्मा में आने वाले कर्मों के द्वारा को आस्रव कहते हैं।
4. **बन्ध** - रागद्वेष आदि भावों के द्वारा आये हुए कर्मों का आत्मा के साथ दूध और जल के समान मिलकर एकमेक हो जाना, बन्ध कहलाता है।
5. **संवर** - आस्रव का न होना अर्थात् आते हुए कर्मों का रुकना, संवर कहलाता है।
6. **निर्जरा** - आत्मा के साथ बद्ध कर्मों का एकदेश (थोड़ा भाग) क्षय हो जाना, निर्जरा कहलाता है।
7. **मोक्ष** - ज्ञानावरणादि आठों कर्मों का क्षय होकर आत्मा का सर्वथा शुद्ध हो जाना, मोक्ष कहलाता है।

सात तत्त्वों का उदाहरण

जैसे एक नाव है वह अजीव है, उसमें बैठे व्यक्ति जीव तत्त्व हैं। नाव में एक छेद है, उस छेद से पानी अन्दर नाव में आ रहा है, यह जो पानी

आने का द्वार है यही आस्रव है और पानी का नाव में एकत्रित होना बन्ध है, अब नाविक के द्वारा नाव डूब जाने के भय से पानी को रोकने के लिए छिद्र को बन्द कर देना संवर है और फिर अन्दर भरा हुआ पानी धीरे-धीरे निकाला जा रहा है यही निर्जरा है और जब सारा पानी निकाल दिया, तब नाव पूर्ण हल्की हो गयी है यही मोक्ष है।

शरीर भी एक नाव है, यह अजीव तत्त्व है, आत्मा जीव तत्त्व है, शुभ-अशुभ कर्मों का आना आस्रव है, आये हुये कर्मों का आत्मा के साथ एकमेक होना बंध है, मन, वचन, काय की चंचलता को रोकना संवर है, तप के द्वारा कर्मों का आत्मा से एक देश छूट जाना निर्जरा है और कर्मों से आत्मा का पूर्ण रूप से अलग हो जाना ही मोक्ष है।

पदार्थ का लक्षण और भेद

जिसमें तत्त्व पाया जाता है उसे पदार्थ कहते हैं। सात तत्त्वों में पुण्य तथा पाप मिलाकर नौ पदार्थ होते हैं।

पुण्य - जिससे प्राणी को इष्ट वस्तु की प्राप्ति तथा सुखदायक सामग्री प्राप्त होती है उसे पुण्य कहते हैं। जैसे-सुपुत्र की प्राप्ति, व्यापार में लाभ और उच्चपद की प्राप्ति ये पुण्य के उदय से होते हैं।

धर्म पालन करना, पूजन करना, दान देना, शिक्षा प्रचार, परोपकार आदि पुण्य संचय के कारण हैं।

पाप - जिससे प्राणी को अनिष्ट वस्तु और दुःखदायक सामग्री प्राप्त होती है, उसे पाप कहते हैं। जैसे पुत्र मर जाना, चोरी हो जाना, रोग हो जाना आदि पाप के उदय से होते हैं।

हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, परिग्रह रखना, परनिन्दा करना, किसी का बुरा विचारना, जुआ खेलना आदि खराब कार्य पाप संचय के कारण हैं।

कर्म

कर्म का लक्षण

जो आत्मा का असली स्वभाव प्रकट नहीं होने देता, उसे कर्म कहते हैं। जैसे बहुत सी धूल या मिट्टी उड़कर सूर्य के प्रकाश को ढक देती है, उसी प्रकार लोक में सब जगह भरे हुये जो पुद्गल परमाणु, राग-द्वेषादि के निमित्त से, आत्मा के प्रदेशों के साथ मिलकर आत्मा का स्वभाव ढक देते हैं, उन पुद्गल परमाणुओं को कर्म कहते हैं।

रागद्वेष के निमित्त से उन कर्मों में सुख-दुःख आदि देने की शक्ति भी हो जाती है।

कर्म के भेद-ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ कर्म हैं।

इनमें से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायकर्म घातिया तथा शेष कर्म को अघातिया कहते हैं।

1. ज्ञानावरण कर्म

जो कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को ढकता है (प्रकट नहीं होने देता) उसे ज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-यदि किसी मूर्ति पर पर्दा पड़ा हो तो जिस तरह उसका रूप नहीं दिखता, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को ढक देता है, प्रकट नहीं होने देता। जैसे-सुरेश अपना पाठ खूब याद करता है, परन्तु उसे याद नहीं होता, इसमें सुरेश के ज्ञानावरण कर्म का उदय समझना चाहिये।

बन्ध के कारण-ज्ञान के साधनों में विघ्न डालना, पुस्तक फाड़ देना, छिपा देना, किसी को नहीं बताना, अपने ज्ञान का गर्व करना, जिनवाणी में संशय करना, अर्थ का अनर्थ करना, गुरु की निन्दा करना, झूठा उपदेश देना

आदि कार्यों से ज्ञानावरणकर्म का बन्ध होता है। इनसे उल्टे कार्य करने से ज्ञान का विकास होता है।

2. दर्शनावरण कर्म

जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण को ढकता है (प्रकट नहीं होने देता) उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-जिस प्रकार कोई पहरेदार राजा के दर्शन नहीं होने देता, उसी प्रकार दर्शनावरण कर्म आत्मा को पदार्थों का दर्शन नहीं होने देता। जैसे-रमेश मन्दिर दर्शन के लिये गया, किन्तु ताला लगा पाया, इसमें रमेश के दर्शनावरण कर्म का उदय समझना चाहिये।

बन्ध के कारण-जिनदर्शन में विघ्न डालना, किसी की आँख फोड़ना, दिन में शयन करना, मुनियों को देखकर घृणा करना, अपनी दृष्टि का गर्व करना इत्यादि कार्यों से दर्शनावरण कर्म का बन्ध होता है।

3. वेदनीय कर्म

जो आत्मा को सुख-दुःख देता है और अव्याबाध सुख (बाधा का अभावरूप) गुण का घात करता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-जिस प्रकार शहद-लपेटी तलवार की धार चाटने से सुख-दुःख दोनों होते हैं अर्थात् शहद मीठा लगने से सुख होता है और तलवार द्वारा जीभ कट जाने से दुःख होता है, वैसे ही वेदनीयकर्म सुख-दुःख दोनों देता है।

बन्ध के कारण व भेद- अपने व दूसरे के विषय में दुःख करना, शोक करना, पश्चाताप करना, रोना, मारना, पशुवध करना, बलि चढ़ाना आदि कार्यों से असातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

दया करना, दान करना, संयम पालना, लोभ न करना, वात्सल्य रखना, वैय्यावृत्य करना, व्रत पालन करना, प्रभावना करना आदि कार्यों से सातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

4. मोहनीय कर्म

जो कर्म आत्मा के सम्यक्त्व और चारित्र गुण का घात करता है अथवा जिसके उदय से यह जीव स्वभाव को भूलकर अपने से जुदा पर वस्तुओं में लुभा जाता है, उसे मोहनीयकर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-जिस प्रकार शराब प्राणी को भुला देती है, उसी प्रकार मोहनीय कर्म आत्मा को मोहित कर देता है। इस कर्म के निमित्त से प्राणी पर पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना कर इष्ट और अनिष्ट रूप आचरण करने लगता है।

क्रोध, मान, माया, लोभ आदि मोहनीय कर्म के उदय से ही होते हैं। जैसे-प्रकाश ने क्रोध में आकर जिनेश को मार दिया, विजय ने लोभ में आकर राजकुमार को लूट लिया। इसमें प्रकाश और विजय के मोहनीय कर्म का उदय समझना चाहिये।

बन्ध के कारण-सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और धर्म में दोष लगाना, उनके स्वरूप को बदलना, मिथ्या देव, शास्त्र, गुरु की प्रशंसा या सेवा करना, आगम की मर्यादा का उल्लंघन करना, क्रोधादि कषायें करना इत्यादि कार्यों से मोहनीय कर्म का बन्ध होता है।

5. आयु कर्म

जो कर्म आत्मा को नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव में से किसी एक के शरीर में रोक रखता है अथवा जिस कर्म के उदय से जीव को किसी पर्याय में किसी निश्चित (नियत) समय तक रहना पड़ता है, उसे आयु कर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-जिस प्रकार सांकल में बंधा हुआ या काठ में फसा हुआ मनुष्य उसके न हटने तक दूसरी जगह नहीं जा सकता, उसी प्रकार आयुकर्म भी प्राणी को मनुष्य आदि के शरीर में रोके रखता है। जब तक एक शरीर की आयु पूरी नहीं हो जाती, तब तक प्राणी दूसरे शरीर में नहीं जा सकता। जैसे-हमारा जीव मनुष्य शरीर में रुका हुआ है और गाय का जीव तिर्यच के शरीर में रुका हुआ है। इसमें हमारे और गाय के क्रम से मनुष्य और तिर्यच आयु कर्म का उदय समझना चाहिये।

बन्ध के कारण व भेद-बहुत हिंसा करना, बहुत आरम्भ करना, बहुत परिग्रह रखना आदि से नरकायु का बन्ध होता है। मायाचारी करने से तिर्यचायु का बंध होता है। थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह रखने आदि से मनुष्यायु का बन्ध होता है। सम्यक्त्व प्राप्ति, व्रतपालन करना, शान्तिपूर्वक दुःख सहना आदि से देव आयु का बन्ध होता है।

6. नाम कर्म

जो कर्म प्राणियों को तरह-तरह के शरीर, अंगोपांग, आकार और रूप-रूपान्तर स्वरूप परिणामाता (करता या बदलता) है, उसे नामकर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-जिस प्रकार कोई चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, कोई मनुष्य का, कोई बैल का, किसी का हाथ लम्बा आदि। इसी प्रकार नामकर्म इस प्राणी को कभी घोड़ा, कभी कुबड़ा, कभी गोरा आदि अनेक रूप परिणामाता है। हमारे आँख, कान, नाक, शरीर आदि सब नाम कर्म के उदय से ही बने हैं।

शुभनामकर्म से शरीर के अंग सुंदर एवं सुडौल होते हैं जबकि अशुभ नामकर्म से असुंदर एवं बेडौल होते हैं।

बन्ध के कारण-मन, वचन, काय को सरल रखना, धर्मात्मा को देख खुश होना, अंगोपांग का छेद नहीं करना, षोडशकारण भावना भाना आदि कार्यों से शुभ नामकर्म का बन्ध होता है।

त्रियोग को कुटिल रखना, दूसरे को देखकर हंसना, धर्मात्माओं के साथ विस्वादा करना, किसी की नकल करना, आपस में लड़ना और किसी का बुरा सोचना आदि कार्यों से अशुभ नाम कर्म का बन्ध होता है।

7. गोत्र कर्म

जिस कर्म के उदय से प्राणी ऊँच या नीच कुल को प्राप्त होता है, उसे गोत्र कर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-जिस प्रकार कुम्हार छोटे या बड़े बर्तन बनाता है, उसी प्रकार गोत्रकर्म इस जीव को ऊँचा या नीचा कुल (गोत्र, घराना) प्राप्त कराता है।

उच्चगोत्र के उदय से लोकमान्य कुल की प्राप्ति होती है तथा नीच गोत्र कर्म के उदय से लोक निन्द्य कुल की प्राप्ति होती है।

बन्ध के कारण-दूसरे की निन्दा करना, अपनी प्रशंसा करना, दूसरे के गुणों को ढाँकना, अपने गैर मौजूद गुणों को प्रकट करना तथा घमंड करना आदि कार्यों से नीच गोत्र कर्म का बन्ध होता है। दूसरे की प्रशंसा करना, अपनी निन्दा करना, दूसरे के दोषों को ढाँकना, अपने दोषों को प्रकट करना आदि कार्यों से उच्च गोत्र कर्म का बन्ध होता है।

8. अन्तराय कर्म

जो कर्म दान, लाभ, भोग, उपभोग या शक्ति में विघ्न डालता है, उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

दृष्टान्त-जिस प्रकार किसी सेठ ने एक पाठशाला को दस हजार रुपया देने की आज्ञा दी, किन्तु मुनीम कुछ गड़बड़ करके उन रुपयों को न दिला कर विघ्न कर देता है, उसी प्रकार अन्तराय कर्म कार्यों में विघ्न किया करता है। जैसे-अजित कुमार लड्डू खा रहा था, कुत्ता लड्डू छीन ले गया, तो अजित के अन्तरायकर्म का उदय समझना चाहिये।

बन्ध के कारण-दान देते को रोक देना, आश्रितों को धर्मसाधन नहीं करने देना, दूसरे की भोग वस्तु को बिगाड़ देना, किसी को हानि पहुँचाना, किसी के सामर्थ्य को बिगाड़ना आदि कार्यों से अन्तराय कर्म का बन्ध होता है।

सबसे खराब कर्म

मोहनीय कर्म से ही दूसरे कर्मों का बंध होता है और इसके नष्ट हुये बिना दूसरे कर्मों का नाश भी नहीं होता। इसकी स्थिति भी सभी कर्मों से अधिक है। इसलिये मोहनीय कर्म ही सबसे खराब कर्म है।

कर्म रहित जीव

अरिहन्त भगवान् के चार घातिया कर्म नहीं होते, सिद्ध परमेष्ठी के आठों कर्म नहीं होते। एक प्राणी के एक पर्याय में एक ही प्रकार के आयु कर्म का बंध होता है।

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु

सच्चे देव -जो रागद्वेष, जन्म, मरण, भूख-प्यास, रोग-भय आदि 18 दोषों से रहित होते हैं, समस्त पदार्थ और उनकी अनंत पर्यायों को जानने वाले होते हैं तथा आत्म कल्याण या मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं, उन्हें सच्चे देव कहते हैं। जैसे- 24 तीर्थंकर, बाहुबली भगवान् आदि।

सच्चे शास्त्र-जो दिगम्बर जैन मुनियों द्वारा लिखें गये हों, जिनमें कषाय और पापों से दूर हटने की चर्चा हो, अहिंसा को मुख्य धर्म बताया हो तथा आत्मकल्याण की चर्चा हो, उनको सच्चा शास्त्र कहते हैं। जैसे-समयसार, मोक्षशास्त्र, रत्नकरण्डक श्रावकाचार आदि।

सच्चे गुरु-जिनके पास पीछी कमण्डलु तथा शास्त्र के अलावा अन्य कोई वस्तु न हो, पाँचों इन्द्रियों के विषयों की इच्छा न रखते हों, जीव हिंसा के कार्यों को न करते हों, नग्न-दिगम्बर हों, स्वाध्याय करना, ध्यान करना, तप करना आदि श्रेष्ठ कार्यों में लगे रहते हों ऐसे आचार्य, उपाध्याय व साधु परमेष्ठी सच्चे गुरु होते हैं।

हमको शिक्षा देने वाले या पढ़ाने वाले गुरु सच्चे गुरु नहीं कहलाते, उनको शिक्षा गुरु कहते हैं। जो वस्त्र पहनते हैं, वे सच्चे गुरु नहीं होते।

शिक्षा

इस प्रकार सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप जानकर सदा ही उनकी भक्ति, पूजा और सेवा करनी चाहिए, किन्तु रागी, द्वेषी, मिथ्या देवों व साधुओं को कभी भी नहीं पूजना चाहिये। अनाचार, शिथिलता तथा विषय कषाय बढ़ाने वाले मिथ्या शास्त्र भी नहीं पढ़ने चाहिए।

रत्नत्रय

सम्यग्दर्शन

सच्चे श्रद्धान (विश्वास या यकीन) को सम्यग्दर्शन कहते हैं। निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन, ये दो सम्यग्दर्शन के भेद हैं।

आत्मा का जैसा का तैसा परद्रव्यों से भिन्न श्रद्धान (विश्वास), निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु, दयामयधर्म और सातों तत्त्वों का सच्चे दिल से यथार्थ श्रद्धान करना, व्यवहार सम्यग्दर्शन कहलाता है।

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति और आवश्यकता-सम्यग्दर्शन धर्मरूपी पेड़ की जड़ है। जड़ के बिना पेड़ नहीं ठहरता, वैसे ही सम्यग्दर्शन के बिना सब धर्म-कर्म व्यर्थ होते हैं, उनसे कुछ अधिक लाभ नहीं होता। इसलिए आत्म-कल्याण के लिए सबसे पहले सम्यग्दर्शन प्राप्त करना आवश्यक है।

सम्यग्दर्शन की महिमा-जिस प्राणी को सम्यग्दर्शन हो जाता है, वह मरने पर स्वर्ग का देव या भोगभूमि में मनुष्य गति में उत्पन्न होता है, स्त्री नहीं होता, पहले नरक को छोड़ अन्य छह नरकों में नहीं जाता, भवनत्रिक, स्थावर, विकलत्रय, पशु, नपुंसक, अल्पायु, गरीब, हीनाङ्ग, पक्षी और नीचकुली भी नहीं होता।

सम्यग्ज्ञान

ठीक-ठीक जैसा का तैसा जानना, किसी प्रकार का संशय नहीं होना सम्यग्ज्ञान कहलाता है। निश्चय सम्यग्ज्ञान और व्यवहार सम्यग्ज्ञान, ये दो सम्यग्ज्ञान के भेद हैं।

आत्मा को जैसा का तैसा पर द्रव्यों से भिन्न जानना, निश्चय सम्यग्ज्ञान कहलाता है। पदार्थों के स्वरूप को ठीक-ठीक जैसा का तैसा जानना, उसमें किसी प्रकार का संशय नहीं होना, व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति और आवश्यकता-सम्यग्ज्ञान होने के पहले जो ज्ञान मिथ्या होता है, सम्यग्दर्शन होने पर वही ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाने लगता है। सम्यग्ज्ञान से ही आत्मज्ञान और केवलज्ञान प्राप्त होता है।

सम्यग्ज्ञान की महिमा-सम्यग्ज्ञान होने पर त्रिगुप्ति (मन, वचन, काय की एकाग्रता) से जन्म-जन्म के पाप कट जाते हैं, जो पाप अज्ञानी प्राणियों के करोड़ों जन्मों तक तप करने पर भी नहीं कटते।

सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति का उपाय-सच्चे शास्त्रों को पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने तथा बार-बार विचारने, आत्म चिन्तन करने, पाठशाला खुलवाने, शास्त्रदान करने या छात्रवृत्ति देने आदि से सम्यग्ज्ञान प्राप्त होता है।

सम्यक् चारित्र

अशुभ कार्यों को छोड़ना, शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करना सम्यक् चारित्र कहलाता है। निश्चय सम्यक् चारित्र और व्यवहार सम्यक् चारित्र ये दो सम्यक् चारित्र के भेद हैं। आत्मस्वरूप में लीन होना, निश्चय सम्यक् चारित्र कहलाता है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों तथा क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों का त्याग करना, व्यवहार सम्यक् चारित्र कहलाता है।

सम्यक् चारित्र की प्राप्ति का उपाय-वीतरागी निर्ग्रन्थ दिग्म्बर साधुओं की संगति करने, दान देने, वैयावृत्ति आदि करने तथा व्रत, समिति, गुप्ति, तप, धर्म आदि करने से सम्यक् चारित्र प्राप्त होता है। इस सम्यक् चारित्र से ही संवर व निर्जरा होती है।

रत्नत्रय और मोक्षमार्ग

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं, इन तीनों की ही एकता को मोक्षमार्ग कहते हैं। यथार्थ में यही मोक्ष प्राप्ति का उपाय है।

शिक्षा

संसार के दुःखों से छूटने का सच्चा उपाय रत्नत्रय ही है, अतः हमको रत्नत्रय धारण करना चाहिए। हमारे मनुष्य जन्म की सफलता भी इसी में है। रत्नत्रय को धारण करने वाले मुनि होते हैं।

भेद-विज्ञान

जिनवाणी अर्थात् सच्चे दिगम्बर जैन शास्त्रों का अध्ययन करके और उनका बार-बार चिंतन करके ऐसा पक्का दृढ़ विश्वास बनाना कि-

1. जो जन्म-मरण आदि 18 दोषों से रहित होने से वीतरागी हैं, समस्त द्रव्यों की अनंत पर्यायों को जानने से सर्वज्ञ हैं, सच्चे आत्मकल्याण का उपदेश देने वाले होने से हितोपदेशी हैं, ऐसे तीन गुणों से सहित जो अरिहंत भगवान् हैं वे ही सच्चे देव हैं, इनके अलावा अन्य कोई सच्चा देव नहीं है।
2. दिगम्बर जैन वीतरागी साधुओं द्वारा लिखे गये शास्त्र ही सच्चे शास्त्र हैं इनके अलावा अन्य शास्त्र सच्चे शास्त्र नहीं हैं।
3. पंचेन्द्रियों के विषयों से दूर रहने वाले, समस्त हिंसाजनित कार्यों से रहित, समस्त परिग्रह से रहित, ज्ञान, ध्यान तथा तप में लीन रहने वाले ऐसे रागद्वेष से रहित दिगम्बर जैन निर्ग्रंथ मुनि ही सच्चे गुरु हैं, अन्य गुरु सच्चे गुरु नहीं हैं।
4. आस्रव और बंध का सच्चा स्वरूप जानकर ये तो हेय हैं, तथा संवर और निर्जरा का स्वरूप जानकर, ये उपादेय हैं तथा कर्म से रहित आत्मा का जो स्वरूप है वही मेरी आत्मा का सच्चा स्वरूप है।
5. मेरी जो ये मनुष्य पर्याय है, इसमें आत्मा और शरीर दो द्रव्य मिले हुये हैं। जो दिखाई पड़ता है, वह तो शरीर है और इसमें जो शक्ति रूप से जानने-देखने रूप कार्य को करने वाला है, वह

आत्मा है। जब आत्मा शरीर से पृथक् हो जाता है तो मात्र शरीर रह जाता है, जिसे हम मृत शरीर कहते हैं।

6. आत्मा की दो पर्याय होती हैं-शुद्ध पर्याय अर्थात् मुक्त या सिद्ध पर्याय तथा अशुद्ध पर्याय अर्थात् संसारी जीव की पर्याय।
7. मेरी वर्तमान मनुष्य पर्याय अशुद्ध पर्याय है। मेरी आत्मा द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म लगे होने से अशुद्ध है। आत्मा के साथ जो पुद्गल कर्म चिपके हुये हैं, वे तो द्रव्यकर्म हैं। आत्मा में जो राग-द्वेष-क्रोध आदि विकारी परिणाम होते हैं, वे भावकर्म हैं और शरीर आदि नोकर्म हैं। मेरी आत्मा स्वभाव से तो सिद्ध भगवान् जैसी अनन्त ज्ञान-दर्शन शक्ति वाला द्रव्य हूँ लेकिन वर्तमान संसारी पर्याय में उपरोक्त तीन कर्मों से सहित होता हुआ, संसार में भटक रहा हूँ।
8. यद्यपि मैं जानने-देखने अर्थात् चेतना वाला जीव द्रव्य हूँ फिर भी अज्ञानवश अपने स्वरूप को न पहचानकर जिस-जिस शरीर को प्राप्त करता हूँ उसी को अपना स्वरूप मान लेता हूँ, यह मेरी महान् भूल है और इसी से मैं संसार में भटक रहा हूँ।
9. कर्म के फलस्वरूप मुझे सुख-दुःख रूप जो भी अच्छी या बुरी वस्तुओं का संयोग प्राप्त होता है, मैं उन रूप होकर अपने को सुखी-दुःखी मानने लगता हूँ, जबकि मेरा स्वभाव तो अनंत सुख वाला है और इसी भूल के कारण मैं भटक रहा हूँ।
10. मैंने अपने को दूसरे का सुख-दुःख देने वाला मान रखा है दूसरे को सुख-दुःख वास्तव में उसके अपने कर्मों के उदयानुसार होता है, परन्तु मैं अपने अज्ञान से अपने को अन्य के सुख-दुःख का कर्ता मानता हूँ। यह मेरी महान् भूल है और इसी भूल के कारण

संसार में भटक रहा हूँ।

11. संसार का कोई भी पदार्थ अच्छा या बुरा नहीं है। मैं अपनी कषायों के अनुसार उनमें अच्छे बुरे की कल्पना कर लेता हूँ। मुझे वस्तु के स्वरूप को जानकर ऐसी भूल नहीं करना चाहिये। यही भूल मेरे संसार भ्रमण का कारण है।

12. उपरोक्त सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का श्रद्धान करता हुआ, सात तत्त्व का श्रद्धान करता हुआ, अज्ञान बुद्धि को समझता हुआ, मैं इस निर्णय पर पहुँचता हूँ कि इस शरीर में मौजूद अनन्त ज्ञान, दर्शन, शक्ति तथा सुख स्वभाव वाला ऐसा मैं आत्मा हूँ। द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा शरीरादि नोकर्म न तो मेरे हैं, न मेरे थे और न मेरे होंगे। मैं भी इनका नहीं हूँ, कभी इनका नहीं था और कभी इनका नहीं होऊँगा। ये सब मुझसे एकदम भिन्न हैं, और मैं चैतन्य आत्मा इन सबसे भिन्न हूँ। अब मैं इन सबको अपने से भिन्न मानता हुआ अपने शुद्ध स्वभाव का निर्णय करता हूँ।

उपरोक्त प्रकार से अपने स्वरूप का और अपने से भिन्न समस्त अन्य द्रव्यों के स्वभाव का निर्णय करते हुये अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान व निर्णय करना भेदविज्ञान है।

षट्लेश्या

कषाय और योग से अनुरंजित आत्मा के परिणामों को लेश्या कहते हैं। मूलतः लेश्या के दो भेद हैं—द्रव्यलेश्या तथा भावलेश्या।

शरीर के रंग को द्रव्यलेश्या एवं कर्म सहित जीव के परिणाम विशेष को भाव लेश्या कहते हैं।

सामान्यतः भावलेश्या के छह भेद हैं—कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल। इनमें से आदि की तीन अशुभ लेश्या और बाद की तीन शुभ लेश्या हैं। अशुभ लेश्याओं से प्रभावित व्यक्ति के मन में पाप क्रिया के भाव जागृत होते हैं। शुभलेश्याओं से व्यक्ति के मन में सन्तोष, सौहार्द, अहिंसा, दया, मैत्री, शान्ति आदि पवित्र भावनाओं का विकास होता है। लेश्याओं के लक्षण इस प्रकार हैं—

1. **कृष्ण लेश्या**—सदा बुरे विचार करना, बात-बात में क्रोध करना, दूसरों से घृणा करना, दया धर्म से रहित होना, बैरभाव रखना, सदा शोक संतप्त रहना आदि कृष्ण लेश्या वालों के लक्षण हैं। अर्थात् अत्यन्त तीव्रता (**WORST**) परिणाम।

2. **नील लेश्या**—आलसी, बुद्धिहीन, कामी, भोगी, डरपोक, उग, सदा मान सम्मान पाने के भाव आदि नील लेश्या वालों के लक्षण हैं। अर्थात् तीव्रतम (**WORSE**) परिणाम।

3. **कापोत लेश्या**—परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, बात-बात में नाराज होना, शोकाकुल होना आदि कापोत लेश्या वालों के लक्षण हैं। अर्थात् तीव्र (**BAD**) परिणाम।

4. **पीतलेश्या**—दयालु, विवेकी, संतोषी, तीव्र बुद्धिमान् होना, सबसे प्रेम करना आदि पीतलेश्या वालों के लक्षण हैं। अर्थात् मंद अथवा

(WORST) परिणाम।

5. पद्म लेश्या-सदा प्रसन्न रहना, सदा परोपकार करना, देवपूजा-दानादि करना, त्याग के भाव रखना आदि पद्म लेश्या वालों के लक्षण हैं। मंदतर अथवा (BETTER) परिणाम।

6. शुक्ल लेश्या- रागद्वेष से रहित होना, प्राणी मात्र के प्रति स्नेह भाव रखना, शोक-निंदा आदि से रहित होना शुक्ल लेश्या वालों के लक्षण हैं। अर्थात् मंदतम अथवा (BEST) परिणाम।

लेश्याओं के स्वरूप को समझने के लिए एक उदाहरण प्रचलित है-छह मित्र एक बगीचे में गये। वहाँ उन्होंने आम से लदा हुआ वृक्ष देखा, पहला मित्र बोला-चलो इस वृक्ष को उखाड़ डालें और पेट भर आम खायें। दूसरे मित्र ने कहा-वृक्षों को उखाड़ने से क्या प्रयोजन, केवल बड़ी-बड़ी शाखाओं को काटने से ही हमारा काम हो जायेगा। तीसरे ने कहा-यह भी उचित नहीं है, हमारा काम तो छोटी-छोटी टहनियों के काटने से ही हो जायेगा। चौथे मित्र ने कहा-टहनियों को तोड़ने से क्या लाभ, केवल गुच्छों को तोड़ना ही पर्याप्त है। पाँचवां मित्र बोला-हमें गुच्छों से क्या प्रयोजन, केवल पके फल तोड़ लेना ही अच्छा है। तब अन्त में छठा मित्र गम्भीर होकर बोला-आप सब क्या सोच रहे हैं। हमें जितने फल चाहिए उतने तो नीचे ही पड़े हैं, फिर व्यर्थ में फल तोड़ने से क्या लाभ ? इस दृष्टान्त से लेश्याओं का स्वरूप समझ में आ जाता है। पहले मित्र के परिणाम कृष्ण एवं छठे मित्र के परिणाम शुक्ल लेश्या के हैं। यह उदाहरण केवल परिणामों की तारतम्यता का सूचक है।

पाठ-9

ध्यान

किसी एक आलम्बन पर मन को केन्द्रित करना ध्यान है। ध्यान के चार भेद हैं—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म्यध्यान, शुक्लध्यान। इनमें आदि के दो ध्यान अशुभ हैं उनसे पाप का बंध होता है। शेष ध्यान शुभ हैं, उनके द्वारा कर्मों का नाश होता है।

(1) आर्तध्यान - आर्त शब्द का अर्थ है-पीड़ा या दुःख अर्थात् दुःख में होने वाले ध्यान को आर्तध्यान कहते हैं। उसके चार भेद हैं :-

1. इष्ट का वियोग होने पर उसकी प्राप्ति के लिये बार-बार चिन्तन करना इष्ट वियोगज आर्तध्यान है। जैसे-किसी प्रिय वस्तु को खो जाने पर उसकी प्राप्ति का निरंतर चिन्तन करना।
2. अनिष्ट का संयोग होने पर उसको दूर करने का बार-बार चिन्तन करना अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है। जैसे किसी गलत किरायेदार के मिल जाने पर उसको हटाने का निरंतर चिन्तन करना।
3. शरीर में रोग की पीड़ा होने पर उसे दूर करने का बार-बार चिन्तन करना पीड़ा चिन्तन आर्तध्यान है। जैसे-कैंसर आदि हो जाने पर उसको इलाज कराने का निरंतर चिन्तन करना।
4. आगामीकाल में सांसारिक सुखों की इच्छा करना निदान आर्तध्यान है। जैसे-इस भव में लखपति करोड़पति बनने का तथा अगले भव में देवपर्याय प्राप्त करने का निरंतर चिन्तन करना।

(2) रौद्रध्यान - रौद्र शब्द का अर्थ क्रूर है। अर्थात् क्रूर परिणामों को रौद्र ध्यान कहते हैं। इसके चार भेद हैं :-

1. हिंसा में आनन्द मानना हिंसानंदी रौद्रध्यान है।

2. झूठ बोलने में आनन्द मानना मृषानंदी रौद्रध्यान है।
3. चोरी करने में आनन्द मानना चौर्यानंदी रौद्रध्यान है।
4. परिग्रह के संचय व रक्षण में आनन्द मानना परिग्रहानंदी रौद्रध्यान है।

(3) धर्म्यध्यान - पवित्र विचारों में मन को स्थिर रखना धर्म्यध्यान है। इसके चार भेद हैं :-

1. आगम के अनुसार तत्त्वों का विचार करना और जिनेन्द्र भगवान् के कहे अनुसार उनकी आज्ञा मानना, आज्ञाविचय धर्म्यध्यान है।
2. अपने तथा दूसरों के राग-द्वेष-मोह आदि विकारों को नाश करने का चिन्तन करना अपायविचय धर्म्यध्यान है।
3. अपने तथा दूसरों के सुख-दुःखों को देखकर कर्मप्रकृतियों के स्वरूप का चिन्तन करना विपाकविचय धर्म्यध्यान है।
4. लोक के स्वरूप का चिन्तन करना संस्थानविचय धर्म्यध्यान है।

(4) शुक्लध्यान :- मन की अत्यन्त निर्मलता होने पर जो एकाग्रता होती है, वह शुक्लध्यान है। यह परिपूर्ण समाधि की स्थिति है और ध्यानस्थ महा मुनियों के ही होता है। इसके चार भेद हैं- 1. पृथक्त्ववितर्कविचार शुक्लध्यान 2. एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यान 3. सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान 4. व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान। वर्तमान काल में यह ध्यान नहीं पाया जाता।

आर्तध्यान करने से तिर्यचगति की तथा रौद्रध्यान करने से नरकगति प्राप्त होती है। धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान मोक्ष के कारण हैं। अतः हमें आर्तध्यान और रौद्रध्यान से बचना चाहिए तथा धर्म्यध्यान में लगना चाहिए।

व्रत

अच्छे कार्यों के करने का नियम करना अथवा बुरे कार्यों को छोड़ना व्रत कहलाता है।

श्रावक पाँच पापों को स्थूल रूप से त्याग करते हैं, इस कारण उनके व्रत अणुव्रत कहलाते हैं। मुनि पूर्ण रूप से त्याग करते हैं, इसलिए उनके व्रत महाव्रत कहलाते हैं।

व्रत 12 होते हैं-5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत, 4 शिक्षाव्रत। इनको श्रावक के उत्तर-गुण भी कहते हैं। इनको पालने वाला श्रावक (व्रती) कहलाता है।

5 अणुव्रत

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह। इन पाँच पापों का स्थूल रूप से एकदेश त्याग करना, अणुव्रत कहलाता है।

1. अहिंसाणुव्रत-प्रमाद से या संकल्पपूर्वक (इरादा करके) त्रस जीवों का घात नहीं करना अहिंसाणुव्रत है। अहिंसाणुव्रती 'मैं इस जीव को मारूँ' ऐसे संकल्प से कभी किसी जीव का घात नहीं करता, न कभी किसी जीव को मारने का विचार करता है और न वचन से किसी से कहता है कि तुम इसे मारो। गृहस्थी चलाने, खेती-व्यापार करने तथा शत्रु से अपने को बचाने में जो हिंसा होती है, उनका श्रावक त्यागी नहीं होता, परन्तु कम से कम करता है।

2. सत्याणुव्रत-स्थूल (मोटा) झूठ, न तो स्वयं बोलना, न दूसरे से बुलवाना और ऐसा सच भी नहीं बोलना जिसके बोलने से किसी जीव का अथवा धर्म का घात होता हो। प्रमाद से जीवों को पीड़ाकारक वचन नहीं बोलना, सत्याणुव्रत है।

3. अचौर्याणुव्रत-लोभ वगैरह प्रमाद के वश में आकर बिना दिए

हुए किसी भी वस्तु को ग्रहण नहीं करना अचौर्याणुव्रत है। अचौर्याणुव्रत का धारी दूसरे की चीज को न तो आप लेता है और न उठाकर दूसरे को देता है।

4. ब्रह्मचर्याणुव्रत-परस्त्री सेवन तथा वेश्या सेवन का त्याग करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। ब्रह्मचर्याणुव्रत धारी अपनी स्त्री को छोड़कर, अन्य सब स्त्रियों को पुत्री, बहिन और माँ के समान समझता है, कभी किसी को बुरी निगाह से नहीं देखता। अष्टमी-चतुर्दशी आदि पर्व के दिनों में कामसेवन कदापि नहीं करता।

5. परिग्रहपरिमाणुव्रत-धन, धान्य, हाथी, घोड़े, नौकर, चाकर, बर्तन वगैरह परिग्रह का अपनी आवश्यकतानुसार परिमाण कर लेना कि मैं इतना रखूंगा, बाकी सबका त्याग कर देना, परिग्रहपरिमाणुव्रत है।

3 गुणव्रत

जो अणुव्रतों का उपकार करें, उन्हें गुणव्रत कहते हैं। गुणव्रत 3 हैं-

1. दिग्ब्रत 2. देशव्रत 3. अनर्थदण्डव्रत।

1. दिग्ब्रत-लोभ, आरम्भ आदि की कमी के अभिप्राय से पूर्व-पश्चिम वगैरह दशों दिशाओं में प्रसिद्ध नदी, गाँव, नगर, पहाड़ वगैरह की सीमा बांध कर जन्मपर्यन्त उस सीमा से बाहर न जाने का नियम करना दिग्ब्रत कहलाता है। जैसे-मैं पूर्व दिशा में कलकत्ता, पश्चिम दिशा में बम्बई, उत्तर दिशा में श्रीनगर, दक्षिण दिशा में चेन्नई से आगे नहीं जाऊंगा।

2. देशव्रत-घड़ी, घण्टा, दिन, महीना वगैरह नियत समय तक, जन्मपर्यन्त के लिए किए हुए दिग्ब्रत में और भी संकोच करके किसी ग्राम, नगर, घर, मुहल्ला वगैरह तक आना-जाना रख लेना और उससे बाहर न जाना देशव्रत है। जैसे-दशलक्षण पर्व के दश दिनों में अपने शहर से बाहर नहीं जाऊंगा।

3. अनर्थदण्डव्रत-बिना प्रयोजन ही जिन कार्यों व पाप का आरम्भ हो उन कार्यों का त्याग करना, अनर्थदण्डव्रत है। जैसे-किसी को हिंसा का

उपदेश देना, किसी की हारजीत सोचना, व्यर्थ में पानी फैलाना या वृक्षों को तोड़ना, टैक्स की चोरी करने के रास्ते बताना, घातक हथियार देना, कुत्ते बिल्ली आदि पालना, सिनेमा या कामवर्धक खोटी कथाओं के सुनने या पढ़ने का त्याग करना।

4 शिक्षाव्रत

जिनसे मुनिव्रत पालन करने की शिक्षा मिले, उनको शिक्षाव्रत कहते हैं। शिक्षाव्रत 4 हैं -

1. सामायिक शिक्षाव्रत- मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना के द्वारा नियत समय तक पाँचों पापों का त्याग करना और सबसे राग-द्वेष छोड़कर, अपने शुद्ध आत्मस्वरूप में लीन होना।

2. प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत-प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को समस्त आरम्भ-परिग्रह छोड़कर और विषय कषाय तथा आहार पानी का 16 पहर (48 घंटे) तक त्याग करना, प्रोषधोपवास कहलाता है। प्रोषध एक बार भोजन करने अर्थात् एकाशन का नाम है। एकाशन के साथ उपवास करना प्रोषधोपवास कहलाता है। जैसे किसी पुरुष को अष्टमी का प्रोषधोपवास करना है तो उसे सप्तमी और नवमी को एकाशन और अष्टमी को उपवास करना चाहिए और श्रृंगार, आरम्भ, गंध, पुष्प (तेल, इतर, फुलेल), स्नान, अंजन, सूंघनी वगैरह चीजों का त्याग करना चाहिए। यह उत्कृष्ट प्रोषधोपवास की रीति है। व्रती प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशी को कम से कम एकभुक्ति करके भी इस व्रत का पालन कर सकता है।

3. भोगोपभोग परिमाणव्रत शिक्षाव्रत-भोगोपभोग की सत्रह वस्तुओं या कार्यों का प्रतिदिन नियम करना। जैसे-आज में एक बार जल पीऊंगा, आज में सवारी में नहीं बैठूंगा आदि।

4. अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत-भक्ति सहित, फल की इच्छा के बिना, स्वपर कल्याण के लिये मुनि आदि पात्रों को दान देना।

इन्द्र एंड कम्पनी, जयपुर

ग्यारह प्रतिमा

श्रावक के 11 दर्जे होते हैं, उन्हें ग्यारह प्रतिमा कहते हैं। श्रावक ऊपर-ऊपर चढ़ता हुआ एक से दूसरी, दूसरी से तीसरी, तीसरी से चौथी, इसी तरह ग्यारहवीं प्रतिमा तक चढ़ता है और उससे ऊपर चढ़कर साधु या मुनि कहलाता है। अगली-अगली प्रतिमाओं में पहले की प्रतिमाओं की क्रिया का होना भी जरूरी होता है। ये प्रतिमा जीवन भर के लिये ली जाती हैं।

1. दर्शन प्रतिमा-सम्यग्दर्शन सहित अतिचार रहित आठ मूलगुणों का धारण करना और सात व्यसनों का अतिचार सहित त्याग करना दर्शन प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी दार्शनिक श्रावक कहलाता है। यह सदा संसार में उदासीन रहता है और इस जन्म तथा अगले जन्म में सांसारिक सुखों की वांछा नहीं रखता।

2. व्रत प्रतिमा-5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत, 4 शिक्षाव्रत इन 12 व्रतों का पालन करना व्रत प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी व्रती श्रावक कहलाता है।

3. सामायिक प्रतिमा-प्रतिदिन प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल दो-दो घड़ी विधिपूर्वक, निरतिचार सामायिक करना, सामायिक प्रतिमा है।

सामायिक करने की विधि -पहले पूर्व दिशा की ओर मुँह करके खड़े होकर नौ बार णमोकारमन्त्र पढ़कर दण्डवत करें, फिर उसी तरफ खड़े होकर तीन बार णमोकारमन्त्र पढ़कर तीन आवर्त और एक नमस्कार (शिरोनति) करें और फिर क्रम से दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा की ओर तीन-तीन आवर्त और एक-एक नमस्कार करें, अनन्तर पूर्व दिशा की ओर मुँह करके खड़े होकर अथवा बैठकर मन, वचन, काय को शुद्ध करके पाँच पापों का त्याग करें, सामायिक पाठ पढ़ें, आत्मचिन्तन करें या किसी मन्त्र का जाप करें। फिर अन्त में खड़े हो नौ बार णमोकर मन्त्र पढ़कर पूर्ववत् चारों दिशाओं

में आवर्त व नमस्कार करें। सामायिक का समय उत्कृष्ट छह घड़ी, मध्यम चार घड़ी, जघन्य दो घड़ी है। 24 मिनट की एक घड़ी होती है।

4. प्रोषधोपवास प्रतिमा-हर एक अष्टमी और चतुर्दशी को 16 पहर का अतिचार रहित उपवास अर्थात् प्रोषधोपवास करना और गृह, व्यापार, भोग, उपभोग की समस्त सामग्री का त्याग करके एकांत में बैठकर धर्म-ध्यान में लगना, प्रोषध प्रतिमा है। मध्यम 12 पहर और जघन्य 8 पहर का प्रोषधोपवास होता है। एक पहर 3 घंटे का होता है।

5. सचित्तत्याग प्रतिमा-हरी वनस्पति अर्थात् कच्चे व पके हुये फल, फूल, बीज, पत्ते, पानी वगैरह न खाना, इनको अग्नि में पकाकर ही खाना, उसे सचित्तत्याग प्रतिमा कहते हैं।

जिसमें जीव होते हैं, उसे सचित्त कहते हैं। अतएव जीव रहित पदार्थों का भक्षण करना, सचित्तत्यागप्रतिमा है।

6. रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा-कृत, कारित, अनुमोदना से और मन वचन काय से रात्रि में सभी प्रकार के आहार का त्याग करना अर्थात् सूर्यास्त के दो घड़ी पहले से सूरज निकलने के दो घड़ी पीछे तक चार प्रकार के आहार का त्याग करना रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा है।

7. ब्रह्मचर्य प्रतिमा-मन, वचन, काय से स्त्री मात्र का त्याग करना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

8. आरम्भत्याग प्रतिमा-मन, वचन, काय से और कृत, कारित, अनुमोदना से गृहकार्य तथा आजीविका सम्बन्धी सब तरह की क्रियाओं का त्याग करना, आरम्भत्यागप्रतिमा है। आरम्भत्यागप्रतिमा वाला स्नान, दान, पूजन वगैरह कर सकता है।

9. परिग्रहत्याग प्रतिमा-धन धान्यादि परिग्रह को पाप का कारण रूप जानते हुए, अति आवश्यक परिग्रह के अलावा समस्त परिग्रह को छोड़ना, परिग्रहत्याग प्रतिमा है।

10. अनुमतित्याग प्रतिमा-गृहस्थाश्रम के किसी भी कार्य का अनुमोदन नहीं करना अनुमतित्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी उदासीन होकर घर में या चैत्यालय या मठ वगैरह में बैठता है। घर पर या और जो कोई श्रावक भोजन के लिए बुलावे उसके यहाँ भोजन कर आता है। किन्तु अपने मुँह से यह नहीं कहता कि मेरे वास्ते वह चीज बनाओ।

11. उद्दिष्टत्याग प्रतिमा-घर छोड़कर वन में या मठ वगैरह में तपश्चरण करते हुए रहना, खण्डवस्त्र धारण करना, बिना याचना किये भिक्षावृत्ति से योग्य उचित आहार लेना, अपने लिये भोजन बनवाने का या बने हुये का त्याग करना, उद्दिष्टत्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमा के धारी क्षुल्लक और ऐलक होते हैं।

ऐलक का लक्षण-जो केवल एक लंगोट मात्र पहनते हैं, पीछी कमण्डलु रखते हैं, केशलोच करते हैं तथा बैठकर हाथ में आहार ग्रहण करते हैं, ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करते हैं। इनको नमस्कार करते समय इच्छामि बोलना चाहिए।

क्षुल्लक का लक्षण-जो पीछी, कमण्डलु रखते हैं, केवल एक लंगोट तथा छोटा दुपट्टा रखते हैं, बैठकर कटोरे में या हाथ में आहार करते हैं, केशलोच करते हैं या कैंची से भी बाल बना सकते हैं, श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करते हैं। इनको नमस्कार करते समय इच्छामि कहना चाहिए।

प्रतिमाधारी के गुणस्थान

ये 11 प्रतिमाएँ देशव्रत नामक पंचम गुणस्थान में होती हैं। इनको क्रम से पालने वाला भव्य स्वर्गादि के उत्तम सुख पाता है। इनमें से 1-6 प्रतिमा वाले जघन्य श्रावक, 7-9 प्रतिमा वाले मध्यम श्रावक तथा 10 व 11 वीं प्रतिमा वाले उत्तम श्रावक कहलाते हैं। श्रावक के व्रतों के कारण, सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति काल से असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा प्रति समय होती है।

पंचपरमेष्ठी के मूलगुण

जो आत्मा के पदों और गुणों में सबसे बड़े होते हैं, राजा महाराजा व इन्द्र जिन्हें सिर झुकाते हैं, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं अथवा जो परमपद में स्थित हों, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं। परमेष्ठी पाँच होते हैं -1. अरिहन्त, 2. सिद्ध, 3. आचार्य, 4. उपाध्याय और 5. साधु।

1. अरिहन्त परमेष्ठी

जिनके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातिया कर्म नष्ट हो गये हैं। जिनके 46 मूलगुण होते हैं और जो 18 दोषों से रहित होते हैं, उन्हें अरिहन्त परमेष्ठी कहते हैं।

अरिहन्त परमेष्ठी के मूलगुण

चौंतीसों अतिशय सहित, प्रातिहार्य पुनि आठ।

अनंत चतुष्टय गुण सहित ये छियालीसों पाठ ॥

दश अतिशय हैं जन्म के, दश ही केवलज्ञान।

चौदह होते देवकृत, अतिशय चौंतीस जान ॥

अर्थात् 34 अतिशय, 8 प्रातिहार्य और 4 अनन्तचतुष्टय ये 46 मूलगुण हैं। 34 अतिशयों में से 10 अतिशय जन्म के होते हैं, 10 केवलज्ञान के होते हैं और 14 देवकृत होते हैं।

जन्म के दश अतिशय

अतिशय रूप सुगन्ध तन, नाहिं पसेव निहार।

प्रियहितवचन अतुल्यबल, रुधिर श्वेत आकार ॥

लच्छन सहस रु आठ तन, समचतुष्क संठान।

वज्रऋषभनाराचजुत, ये जनमत दश जान ॥

भावार्थ-1. अरिहन्त भगवान् का शरीर जन्म से ही बड़ा सुन्दर सुडौल होता है। 2. उनके शरीर से बड़ी अच्छी सुगन्ध आती है। 3. उनके शरीर में पसीना नहीं आता है। 4. मल-मूत्र नहीं होता है। 5. वे सबसे मीठे वचन बोलते हैं। 6. उनके शरीर में अतुल्य बल होता है। 7. उनका रक्त दूध के समान सफेद होता है। 8. उनके शरीर में 1008 शुभ लक्षण होते हैं। 9. उनका समचतुष्क संस्थान होता है। 10. उनके शरीर के हाड़ वगैरह वज्र के होते हैं।

केवलज्ञान के दश अतिशय

योजन शत इक में सुभिख, गगन गमन मुख चार।

नहिं अदया उपसर्ग नहिं, नाहीं कवलाहार ॥

सब विद्या-ईश्वरपनो, नाहिं बहें नख केश।

अनिमिष दृग, छाया रहित, दश केवल के वेश ॥

भावार्थ-1. जब अरिहन्त भगवान् को केवलज्ञान होता है तो उस समय जहाँ भगवान् होते हैं, उस स्थान पर चारों तरफ सौ-सौ योजन तक सुकाल रहता है। 2. आकाश में गमन होता है। 3. देखने वालों को चारों तरफ उनका मुख दिखलाई देता है। 4. उनके शरीर से किसी भी जीव की हिंसा नहीं होती। 5. उन पर कोई उपसर्ग नहीं कर सकता। 6. कवलाहार नहीं लेते हैं, 7. वे समस्त विद्या और शास्त्रों के ज्ञाता होते हैं। 8. उनके बाल और नाखून नहीं बढ़ते हैं। 9. उनकी पलकें नहीं झपकती हैं, 10. शरीर की परछाई नहीं पड़ती है। ये दश अतिशय केवलज्ञान होने के समय प्रकट होते हैं।

देवकृत चौदह अतिशय

देवरचित हैं चारदस, अर्द्धमागधी भाष।

आपस माहीं मित्रता, निर्मल दिश आकाश ॥

होत फूल फल ऋतु सबै, पृथ्वी कांच समान।

चरण कमल तल कमल हैं, नभ तैं जय जय बान ॥

मन्द सुगन्ध बयार पुनि, गन्धोदक की वृष्टि।
भूमि विषै कण्टक नहीं, हर्ष मयी सब सृष्टि ॥
धर्मचक्र आगे रहे, पुनि वसु मंगल सार।
अतिशय श्री अरिहन्त के, ये चौतीस प्रकार ॥

भावार्थ-1. भगवान् की दिव्यध्वनि अर्द्धमागधी भाषा में होना। 2. समस्त जीवों में परस्पर मित्रता का होना। 3. दिशाओं का निर्मल होना। 4. आकाश का निर्मल होना। 5. सब ऋतुओं के फल-फूल धान्यादि का एक ही समय फलना फूलना। 6. एक योजन तक की पृथ्वी का दर्पण की तरह निर्मल होना। 7. चलते समय भगवान् के चरण कमलों के नीचे स्वर्ण कमलों का होना। 8. आकाश में जय-जय ध्वनि का होना। 9. मन्द सुगन्धित पवन का चलना। 10. सुगन्धमय जल की वृष्टि होना। 11. पवनकुमार देवों के द्वारा भूमि का कण्टक रहित होना। 12. समस्त जीवों का आनन्दमय होना। 13. भगवान् के आगे धर्मचक्र का चलना। 14. छत्र, चमर, ध्वजा, घंटा आदि अष्ट मंगल द्रव्यों का साथ रहना। इस प्रकार सब मिलाकर 34 अतिशय अरिहन्त भगवान् के होते हैं।

अष्ट प्रातिहार्य

तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छविदार।

तीन छत्र सिर पर लसै, भामण्डल पिछवार ॥

दिव्यध्वनि मुखतें खिरै, पुष्पवृष्टि सुर होय।

ढोरें चौसठ चमर जख, बाजें दुन्दुभि जोय ॥

भावार्थ-1. भगवान् के समीप अशोक वृक्ष का होना। 2. रत्नमय सिंहासन होना। 3. भगवान् के सिर पर तीन छत्र का होना। 4. भगवान् की पीठ के पीछे भामण्डल का होना। 5. भगवान् के मुख से दिव्यध्वनि का खिरना। 6. देवों के द्वारा फूलों की वर्षा होना। 7. यक्ष जाति के देवों द्वारा चौसठ चमरों का दुरना। 8. दुन्दुभि बाजों का बजना। ये आठ प्रातिहार्य हैं।

अनन्त चतुष्टय

ज्ञान अनन्त, अनन्त सुख, दश अनन्त प्रमान।

बल अनन्त अरिहंत सो, इष्टदेव पहिचान ॥

भावार्थ-1.अनन्त दर्शन, 2.अनन्त ज्ञान, 3.अनन्त सुख, 4.अनन्त वीर्य ये चार अनन्त चतुष्टय कहे जाते हैं।

इस प्रकार 34 अतिशय, 8 प्रातिहार्य, 4 अनंत चतुष्टय। सब मिलाकर 46 मूलगुण अरिहन्त भगवान् के होते हैं।

2. सिद्ध परमेष्ठी

जो आठों कर्मों का नाश करके संसार के बन्धन से सदैव के लिए मुक्त हो गए हैं, अर्थात् जो फिर कभी संसार में लौटकर नहीं आयेंगे, उन्हें सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं। इनके 8 मूलगुण होते हैं-

सिद्ध परमेष्ठी के मूलगुण

समकित दर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहना।

सूक्ष्म वीरजवान, निराबाध गुण सिद्ध के ॥

1. अनन्त सम्यक्त्व, 2.अनन्त दर्शन, 3.अनन्त ज्ञान, 4. अगुरुलघु,
5. अवगाहनत्व, 6. सूक्ष्मत्व, 7. अनन्तवीर्य, 8. अव्याबाधत्व।

3. आचार्य परमेष्ठी

जो मुनि संघ के अधिपति होते हैं, उनको दीक्षा तथा प्रायश्चित्त आदि देते हैं। जिनके 36 मूलगुण होते हैं तथा जो पञ्चाचार का पालन स्वयं करते हैं एवं दूसरे मुनियों से कराते हैं, उन्हें आचार्य परमेष्ठी कहते हैं।

आचार्य परमेष्ठी के मूलगुण

द्वादश तप, दश धर्मजुत, पालें पंचाचार।

षट आवश्यक, गुप्ति त्रय, आचारज गुण सार ॥

बारह तप

अनशन ऊनोदर करे, व्रतसंख्या रस छोर।

विविक्त शय्यासन धरे, कायकलेश सुठौर ॥

प्रायश्चित्त धर विनयजुत, वैयावृत स्वाध्याय।

पुनि उत्सर्ग विचारके, धरे ध्यान मन लाय ॥

इच्छाओं का जीतना तप है। 1. अनशन तप- चार प्रकार के आहार का त्याग करना। 2. ऊनोदर तप- भूख से कम भोजन करना, 3. वृत्तिपरिसंख्यान तप- भोजन को जाते समय अटपटी प्रतिज्ञा लेना। 4. रसपरित्याग तप- छहों रसों या एक दो आदि रसों का त्याग करना। 5. विविक्तशय्यासन तप- स्वाध्याय ध्यान आदि की सिद्धि के लिये एकांत तथा पवित्र स्थान में सोना बैठना। और 6. कायकलेश तप- शरीर को वश करने के लिये उसे सदी, गर्मा आदि का कष्ट देना। 7. प्रायश्चित्त तप- दोषों की शुद्धि के लिये दंड ग्रहण करना। 8. विनयतप- रत्नत्रय व उसके धारकों की विनय करना। 9. वैयावृत्य तप- रोगी या वृद्ध मुनि की सेवा करना। 10. स्वाध्याय तप- शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना विचारना और उपदेश देना। 11. व्युत्सर्गतप- शरीर से ममता छोड़ना। 12. ध्यानतप- एकाग्रता से आत्म चिन्तन करना। ये 12 तप हैं।

दश धर्म

क्षमा मार्दव आरजव, सत्यवचन, चितपाग।

संयम तप त्यागी सरव, आकिंचन तियत्याग ॥

1. उत्तम क्षमा- क्रोध के कारण उपस्थित रहते हुए भी क्रोध नहीं करना। 2. उत्तम मार्दव- उत्तम कुल, विद्या, बल आदि का घमंड नहीं करना। 3. उत्तम आर्जव- मायाचार का त्याग करना। 4. उत्तम शौच- लोभ का त्याग करना आत्मा को पवित्र बनाना। 5. उत्तम सत्य- रागद्वेष पूर्वक असत्य वचनों को छोड़कर हित मित प्रिय वचन बोलना। 6. उत्तम संयम -

5 इन्द्रिय और मन को वश में करना तथा छह काय के जीवों की रक्षा करना।
 7. **उत्तम तप**-बाह्याभ्यन्तर 12 प्रकार के तपों का करना। 8. **उत्तम त्याग**-कीर्ति तथा प्रत्युपकार की वांछा से रहित होकर चार प्रकार का दान देना। 9. **उत्तम आकिञ्चन्य**-पर पदार्थों में ममत्वरूप परिणामों का त्याग करना। और
 10. **उत्तम ब्रह्मचर्य**-स्त्री मात्र का त्यागकर एवं आत्मा के शुद्ध स्वरूप में लीन रहना) जो प्राणियों को संसार से छुड़ाकर उत्तम सुख प्राप्त कराता है, वह धर्म कहलाता है।

पञ्चाचार और तीन गुप्ति

दर्शन ज्ञान चरित्र तप, वीरज पंचाचार।

गोपे मन वच काय को, गिन छतीस गुण सार ॥

दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार ये पाँच आचार हैं। 1. सम्यग्दर्शन के दोष हटाना दर्शनाचार कहलाता है। 2. सम्यग्ज्ञान को बढ़ाना और उसके दोष हटाना ज्ञानाचार कहलाता है। 3. सम्यक्चारित्र को विशुद्ध करना चारित्राचार है। 4. तप की वृद्धि करना तपाचार कहलाता है। 5. आत्मबल को प्रकट करना वीर्याचार कहलाता है। ज्ञान आदि के दोष हटाना और उन्हें बढ़ाना आचार है।

छह आवश्यक

समता धर वंदन करे, नाना थुति बनाय।

प्रत्याख्यान प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग लगाय ॥

समता, वन्दना, स्तुति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ये 6 आवश्यक हैं। 1. समस्त जीवों से समताभाव समता कहलाती है। 2. किसी एक तीर्थकर या सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु परमेष्ठी का गुणगान करना वन्दना कहलाती है। 3. चौबीस तीर्थकरों का स्तवन स्तुति कहलाती है। 4. लगे हुये दोषों पर पश्चाताप प्रतिक्रमण कहलाता है। 5. भविष्यत् काल में दोषों का त्याग करना प्रत्याख्यान कहलाता है। 6. खड़े होकर ध्यान लगाना

तथा शरीर से ममत्व छोड़ना कायोत्सर्ग कहलाता है। आवश्यक का लक्षण-प्रतिदिन करने योग्य जरूरी कार्यों को आवश्यक कहते हैं।

4. उपाध्याय परमेष्ठी

जो 11 अंग और 14 पूर्व के पाठी होते हैं, जो स्वयं पढ़ते और अन्य पास में रहने वाले भव्य-जीवों को पढ़ाते हैं, जिनके 25 मूलगुण होते हैं, उन्हें उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी के 25 मूलगुण

ग्यारह अंग

प्रथमहिं आचारांग गनि, दूजो सूत्रकृतांग।

ठाणअंग तीजो सुभग, चौथो समवायांग ॥

व्याख्यापणति पांचमों, ज्ञातृकथा षट् जान।

पुनि उपासकाध्ययन है, अंतःकृत दश ठान ॥

अनुत्तरण उत्पाद दश, सूत्रविपाक पिछान।

बहुरि प्रश्नव्याकरण जुत, ग्यारह अंग प्रमान ॥

1-आचारांग, 2-सूत्रकृताङ्ग, 3-स्थानाङ्ग, 4-समवायाङ्ग, 5-व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्ग, 6-ज्ञातृधर्मकथाङ्ग, 7-उपासकाध्ययनाङ्ग, 8-अंतकृदशाङ्ग, 9-अनुत्तरोपपादिकदशाङ्ग, 10-प्रश्नव्याकरणाङ्ग, 11-विपाकसूत्राङ्ग ये 11 अंग हैं।

चौदह पूर्व

उत्पादपूर्व अग्रायणी, तीजो वीरजवाद।

अस्तिनास्तिपरिवाद पुनि, पंचम ज्ञानप्रवाद ॥

छट्टो कर्मप्रवाद है, सतप्रवाद पहिचान।

अष्टम आत्मप्रवाद पुनि, नवमों प्रत्याख्यान ॥

विद्यानुवाद पूरव दशम, पूर्वकल्याण महन्त।

प्राणवाद किरिया बहुल, लोकबिन्दु है अन्त ॥

कर्मव्यासी उपस्थिति रजिस्टर

उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यानुवाद, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवादपूर्व, कर्मप्रवाद पूर्व, सत्यप्रवादपूर्व, आत्मप्रवादपूर्व, प्रत्याख्यानप्रवाद पूर्व, विद्यानुवाद पूर्व, कल्याणानुवादपूर्व, प्राणवादप्रवाद, क्रियाविशाल तथा लोकबिन्दुसार ये 14 पूर्व हैं।

5. साधु परमेष्ठी

जिनके 28 मूलगुण होते हैं, जो ज्ञान, ध्यान और तप में लीन रहते हैं, जो आरम्भ, परिग्रह नहीं रखते हैं, जो हमेशा आत्म साधना स्वरूप मोक्षमार्ग में लगे रहते हैं, उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं।

साधु परमेष्ठी के 28 मूलगुण

पञ्च महाव्रत समिति औ, पञ्चेन्द्रिय का रोध।

षट् आवश्यक साधुगुण, सात शेष अवबोध ॥

5 महाव्रत, 5 समिति, 5 इन्द्रियविजय 6 आवश्यक और शेष ये 28 साधु परमेष्ठी के मूलगुण हैं।

पञ्च महाव्रत

हिंसा अनृत तस्करी, अब्रह्म परिग्रह पाप।

मन वच तन तें त्यागवो, पंच महाव्रत थाय ॥

मन, वचन, काय से पाँचों का पूर्णत्याग होना, महाव्रत कहलाता है। अहिंसा महाव्रत, सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत और अपरिग्रह महाव्रत ये पाँच महाव्रत हैं।

मन, वचन, काय से सर्वथा हिंसा का त्याग होना अहिंसा महाव्रत कहलाता है। मन, वचन, काय से सर्वथा असत्य का त्याग होना सत्य महाव्रत कहलाता है। मन, वचन, काय से चोरी का सर्वथा त्याग होना अचौर्य महाव्रत कहलाता है। मन, वचन, काय से मैथुन का सर्वथा त्याग होना ब्रह्मचर्य महाव्रत कहलाता है। मन, वचन, काय से परिग्रह का सर्वथा त्याग होना अपरिग्रह महाव्रत कहलाता है।

पञ्च समिति

ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपण आदान।

प्रतिष्ठापनाजुत क्रिया, पांचों समिति विधान ॥

गमनादि में जीवघात से बचने के लिये यत्नाचार रखना समिति कहलाती है। ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण और प्रतिष्ठापना, ये पाँच समितियाँ हैं। 1. ईर्यासमिति-चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना। भाषा समिति-हित मित प्रिय वचन बोलना। एषणा समिति-दिन में एकबार शुद्ध निर्दोष आहार लेना। आदान निक्षेपण समिति-देखभालकर किसी वस्तु को उठाना रखना। और प्रतिष्ठापनासमिति-जीव रहित स्थान में मलमूत्र क्षेपण करना।

षट् आवश्यक

समताधर वंदन करैं नाना थुति बनाय।

प्रत्याख्यान प्रतिक्रमण कायोत्सर्ग मनाय ॥

1. समता, 2. वन्दना, 3. स्तुति, 4. प्रतिक्रमण, 5. प्रत्याख्यान, 6. कायोत्सर्ग, पंचेन्द्रियविजय एवं शेष सात गुण

सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत्र का रोध।

शेष सात मंजन तजन, शयन भूमिका शोध ॥

वस्त्रत्याग कचलुंच अरु, लघु भोजन इकबार।

दांतुन मुख में ना करैं, ठाड़े लेहि अहार ॥

1. स्पर्शन, 2. रसना, 3. घ्राण, 4. चक्षु, 5. श्रोत्र, इन पाँच इन्द्रियों को वश में करना। 1. स्नान का त्याग करना, 2. निर्जन्तु भूमि पर सोना, 3. वस्त्रत्याग करना, 4. बालों का उखाड़ना, 5. एक बार थोड़ा भोजन करना, 6. दन्तधावन अर्थात् दातुन न करना, 7. खड़े होकर आहार लेना।

इस प्रकार से सब मिलाकर 28 मूलगुण सर्व सामान्य मुनियों के होते हैं। मुनिजन इनका पालन करते हैं। यदि एक भी मूलगुण इनमें से रह जाय तो मुनिपना नहीं रहता।

जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्त

1. जीव न जन्मता है न मरता है, मात्र पर्याय बदलती है।
2. जीव अपने कर्मों का फल स्वयं पाता है भगवान् उसके कर्ता धर्ता नहीं हैं।
3. भगवान् जन्मते नहीं बनते हैं।
4. जो भगवान् बन जाते हैं, वे लौट कर संसार में कभी नहीं आते।
5. हमारे अंदर भगवान् बनने की शक्ति मौजूद है, यदि हम पुरुषार्थ करें तो भगवान् बन सकते हैं।
6. जैनधर्म अनादिकाल से चला आ रहा है। भगवान् आदिनाथ ने जैनधर्म के सिद्धान्तों की पुनर्व्याख्या की।
7. जैनदर्शन का मौलिक सिद्धान्त है- अनेकांत और स्याद्वाद।
8. सृष्टि की रचना का न आदि है न अन्त है।
9. किसी भी द्रव्य का कभी नाश नहीं होता है।
10. हमें कोई सुखी दुःखी नहीं कर सकता हैं हम अपने ही कर्मों से सुखी दुःखी होते हैं।
11. संसारी जीव का पुनर्जन्म होता है, जीव अनन्त है, जीव की सत्ता का कभी नाश नहीं होता।

हमारे दैनिक कर्तव्य

1. सूर्य उदय से पहले उठना चाहिये।
2. सुबह उठते ही णमोकार मंत्र बोलना चाहिए।
3. सुबह माता-पिता एवं बड़ों के चरणस्पर्श एवं सभी से जयजिनेन्द्र बोलना चाहिए।
4. प्रतिदिन मंदिर जी में भगवान् के दर्शन एवं स्वाध्याय करना चाहिए।
5. प्रतिदिन मंदिर जी की गोलक में कुछ पैसे अवश्य डालने चाहिए।
6. भोजन करने से पहले णमोकार मंत्र बोलना चाहिए।
7. भोजन करने के बाद 9 बार णमोकार मंत्र बोलना चाहिए।
8. टी.वी. नहीं देखना चाहिए यदि देखें तो एक घंटे से ज्यादा नहीं।
9. किसी को अपशब्द नहीं बोलना चाहिए।
10. बड़ों से जी लगाकर के ही बोलना चाहिए।
11. सबसे प्रसन्न मुद्रा में शिष्टाचारपूर्वक बोलना चाहिए।
12. भाई-बहनों से या अन्य किसी से झगड़ना नहीं चाहिए।
13. सायं/अंधेरा होने से पहले भोजन कर लेना चाहिए। उसके बाद अन्न की वस्तु नहीं खाना चाहिए।
14. रात्रि में सोने से पहले दादा-दादी एवं माता-पिता की सेवा करके, आशीर्वाद प्राप्त करके सोना चाहिए।
15. सोने से पहले 9 बार णमोकार मंत्र पढ़ना चाहिए।
16. घर में आये मेहमानों के चरण-स्पर्श करके जयजिनेन्द्र बोलना चाहिए एवं उनसे मीठी-मीठी बातें करना चाहिए।
17. मात-पिता की आज्ञा मानना चाहिए।

संस्थान द्वारा संचालित प्रमुख गतिविधियाँ

- महाकवि आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास - जिसमें अंग्रेजी सहित कक्षा दशवीं के उत्तीर्ण छात्रों को प्रवेश देकर उन्हें धार्मिक एवं नैतिक संस्कारों से सुशोभित करते हुये जैनदर्शन एवं इच्छुक छात्रों को कम्प्यूटर शिक्षा, वास्तुशिल्प विज्ञान, ज्योतिष के अध्ययन के साथ ही संस्कृत, अंग्रेजी भाषा की प्रवीणता के लिये प्रशिक्षित शिक्षकों की व्यवस्था एवं प्रतियोगी परीक्षाओं के लिये विशेष दिशा निर्देश की भी सुविधा उपलब्ध है। धार्मिक अध्ययन सहित कुल पाँच वर्ष के पाठ्यक्रम में दोवर्षीय उपाध्याय परीक्षा (सीनियर हायर सेकेण्डरी के समकक्ष) माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अजमेर से, तीनवर्षीय शास्त्री परीक्षा (बी. ए. के समकक्ष) राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है। जो सरकार द्वारा आई. ए. एस. और आर.ए.एस. जैसी किसी भी सर्वमान्य प्रतियोगी परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिये मान्य है।
- आचार्य ज्ञानसागर ग्रन्थमाला - श्रेष्ठ आगम ग्रन्थ तथा अन्य शोध पूर्ण कृतियों को प्रकाशित कर उन्हें अर्द्ध मूल्य में स्वाध्याय हेतु उपलब्ध कराना।
- भारतवर्षीय श्रमण संस्कृति परीक्षाबोर्ड - इस परीक्षाबोर्ड की स्थापना का मुख्य उद्देश्य श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर द्वारा पंजीकृत पाठशालाओं एवं विभिन्न धार्मिक व लौकिक शिक्षण संस्थाओं में अध्ययन करने वाले छात्र-छात्राओं, प्रौढ़वर्ग (महिला-पुरुष) के लिये धार्मिक परीक्षा आयोजित करना और उन्हें उपाधियाँ प्रदान करना एवं आर्षमार्गीय सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करना है।
- धार्मिक शिक्षण शिविर-जैन संस्कृति के संरक्षण, सम्बर्द्धन तथा धार्मिक ग्रन्थों एवं सिद्धान्तों की जानकारी के लिये बालक, युवाओं एवं प्रौढ़ श्रावकों को धर्म में सम्यक् श्रद्धा जागृत करने हेतु आध्यात्मिक शिक्षण एवं प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करना।
- प्रवचन व्यवस्था- दशलक्षणपर्व, अष्टाद्विका पर्व, एवं अन्य धार्मिक पर्वों पर देश-विदेश के लिये विद्वानों की व्यवस्था करना।
- अनुष्ठान व्यवस्था-पंचकल्याणक, वेदीप्रतिष्ठा, वेदीशिलान्यास एवं समस्त विधि विधानों एवं धार्मिक आयोजनों के लिये श्रेष्ठ प्रतिष्ठाचार्यों एवं विद्वानों की व्यवस्था करना।

यदि आप अपनी पर्याय सफल करना चाहते हैं
तो अपने बच्चों को विद्वान् बनाने के लिए संस्थान में अवश्य भिजवायें।